Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग की उपादेयता

डॉ. भारत भूषण द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), बुद्ध विद्यापीठ महाविद्यालय, सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 2 Issue 3
Page Number : 149-154

Publication Issue :
May-June-2019

Article History
Accepted : 20 June 2019
Published : 30 June 2019

शोध सारांश – श्रीमद्भगवद्गीता में मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति हेतु ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और कर्ममार्ग का उपदेश दिया गया है। भारतीय दर्शन में मुक्ति केवल शरीर त्याग के पश्चात् ही नहीं मानी गयी है, शरीरधारण के साथ भी मुक्ति की संकल्पना का विधान है। इस जीवन के रहते मुक्ति जीवनमुक्ति तथा शरीरत्याग के पश्चात् मुक्ति विदेहमुक्ति कही गयी है। परन्तु शरीरधारण करते हुए भी मुक्ति कैसे संभव हो सकती है, इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग तथा कर्ममार्ग का विस्तृत वर्णन किया है। यद्यपि मुक्ति हेतु तीनों मार्गों में कोई तात्त्विक विरोध नहीं है, फिर भी एक साधारण संसारी व्यक्ति के लिए कर्मयोग का मार्ग अपेक्षाकृत सरल और सुगम मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कर्मयोग को गीता में 'निष्काम कर्मयोग', 'बुद्धियोग' अथवा केवल 'योग' के नाम से भी कहा गया है। 'योगः कर्मसु कौशलम्' कर्मयोग का प्रसिद्ध वाक्य है। व्यक्ति जीवन धारण करने के साथ ही अपने सभी कर्त्तव्यों का निर्वहण करते हुए भी इस मार्ग पर चलकर परम् शान्ति का अनुभव करते हुए मुक्त हो सकता है। इस प्रकार निष्काम कर्मयोग का मार्ग व्यावहारिक दृष्टि से अधिकाधिक लोगों के लिए सुलभ मार्ग सिद्ध होता है। इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति जीवनमुक्ति की दशा में स्थित रहते हुए परम् आनन्द प्राप्त करता हुआ शरीर त्याग के बाद विदेहमुक्ति की अवस्था को प्राप्त हो जाता है तथा पूर्णतया जीवन मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मुख्य शब्द– निष्काम, कर्मयोग, श्रीमद्गवद्गीता मुक्ति ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग के विषय में विस्तार से उपदेश दिया है। मनुष्य स्वभावतः प्राचीन काल से ही सांसारिक दुखों से मुक्ति तथा आनन्द की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहा है। वस्तुतः वह किस मार्ग पर चलकर अपने जीवन को आनन्दमय बना सके , यह चिन्तन ज्ञानियों , ऋषि–मुनियों के द्वारा लगातार की जाती रहीं। इसी क्रम में श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने तीन मार्गों का वर्णन किया है– ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग तथा कर्ममार्ग। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अनुपम समन्वय है। ईश्वर को ज्ञान से अपनाया जा सकता है, कर्म से अपनाया जा सकता है तथा भक्ति से भी अपनाया जा सकता है। इस प्रकार तीनों मार्गों से लक्ष्य ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। जिस प्रकार विभिन्न रास्तों से चलकर एक लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है, उसी प्रकार विभिन्न मार्गों से ईश्वर की प्राप्ति संभव है। इन तीनों मार्गों में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है बल्कि व्यक्ति की परिस्थिति और सामर्थ्य के अनुरूप मार्ग का चयन करने के लिए भगवान के द्वारा उपदेशित किया गया है। व्यक्ति अपनी क्षमता व सामर्थ्य के बल पर उचित मार्ग का चयन कर परम् पुरूषार्थ मोक्ष को पाने का अधिकारी बन सकता है। इनमें से ज्ञानमार्ग ज्ञानियों के लिए विहित है। जो लोग अपने ज्ञान के सामर्थ्य से आत्मा तथा परमात्मा के एकत्व तथा शरीर एवं आत्मा के पृथक्त्व को अनुभूत कर सकते हैं, उन के लिए ही ज्ञानमार्ग का विधान है। ज्ञानमार्ग को ही सांख्य मार्ग भी कहा गया है। इस ज्ञानमार्ग अथवा सांख्यमार्ग में देह और देही सम्बन्धी तत्त्वज्ञान की बातें हैं जो 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' है , अतएव साधारण मानवों के लिए अगम्य है। दूसरे, जिस व्यक्ति पर ईश्वरीय कृपा के फलस्वरूप हृदय में परमात्मा के प्रति भक्ति का उदय हो , उसके लिए ही भक्तिमार्ग का आलम्बन परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला हो

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

सकता है। इसके लिए भी विद्वन्मंडली में दो न्याय प्रचलित हैं– मार्जारशावकन्याय तथा मर्कटशावकन्याय। **मार्जारशावकन्याय** को मानने वाले के अनुसार जिस प्रकार मार्जार अर्थात् बिल्ली अपने शावक अर्थात् बच्चे को अपने दाँतों से उठाकर संकटों से परे ले जाती है, भगवान भी स्वयं अपने भक्त को भवसागर के बन्धनों से मुक्त करते हैं। अर्थात् भक्त को किसी प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती है, जब भगवत्कृपा होगी तो स्वयं ही उस भक्त का कल्याण हो जाएगा। **मर्कटशावकन्याय** को मानने वालों के अनुसार जिस प्रकार मर्कट अर्थात् बन्दर अपने शावक को संकट से बचाने के लिए स्वयं कुछ नहीं करता, बल्कि उसका शावक अर्थात् बच्चा स्वयं ही अपने प्रयास से उसे पकड़कर संकट से पार हो जाता है, उसी प्रकार भक्त भी यदि अपने से प्रयत्न करे तथा भगवान को सहारा बना ले तो सांसारिक दुःखों से पार होकर मुक्त हो सकता है। दोनों ही स्थितियों में मुक्ति पाना थोड़ा असंभव प्रतीत होता है, क्योंकि पहले न्याय वाले के अनुसार यदि किसी पर भगवान स्वयं कृपा न करें तो उसके लाख प्रयत्न के बाद भी उसकी मुक्ति संभव नहीं है। जबकि दूसरे न्याय के अनुसार भगवान चाहें भी परन्तु व्यक्ति स्वयं प्रयास न कर घोर पापकर्मों में प्रवृत्त रहे तो भी उसकी मुक्ति संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में **मानवशावकन्याय** को मानने में कोई आपत्ति नहीं है। अर्थात् जिस प्रकार मानव अपने बच्चे को संकटों से बचाने के लिए स्वयं भी प्रस्तुत रहता है तथा बच्चा भी अपना प्रयास करता है। इसी प्रकार भक्त जब योगसाधना आदि का अनुपालन करते हुए भगवान के प्रति अनन्यभाव रखता है तब भगवान भी उसके लिए हर क्षण तत्पर रहते हैं। यहीं तो भक्तिमार्ग का रहस्य है। स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।[1]

परन्तु इन दोनों मार्गों के अतिरिक्त भगवान ने तीसरे मार्ग 'कर्ममार्ग' का व्यापक उपदेश दिया है। वस्तुतः समाज में बहुलता वैसे लोगों की देखी जाती है, जो प्रतिक्षण अपने दैनिक कर्त्तव्यों का पालन करने में लगे हुए हैं। प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे लोगों को भी सांसारिक दुःखों से मुक्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है? क्या जीवन के परम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु वे भी अधिकारी हो सकते हैं। ऐसे ही लोगों के प्रतिनिधिस्वरूप अर्जुन को मानते हुए भगवान श्रीकृष्ण कर्ममार्ग का उपदेश देते हैं, जिसके माध्यम से साधारण संसारी व्यक्ति भी अपने कर्मों को करते हुए मोक्ष का अधिकारी बन सके।

वस्तुतः किसी भी कर्म को करने पर व्यक्ति कर्मफल के हेतु का भागी बनता है। अर्थात् यदि वह अच्छा कर्म करता है तो उससे प्राप्त होने वाले फल पुण्य को प्राप्त करता है और यदि बुरा कर्म करता है तो उससे प्राप्त होने वाले फल पाप को प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में दोनों ही प्रकार से व्यक्ति कर्मफल (पुण्य अथवा पाप) के बन्धन में बँध जाता है। परिणामस्वरूप जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता। फिर उसी कर्म को किस रूप में किया जाय कि वह बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सके? इस जन्म में भी सांसारिक बन्धनों से मुक्त रहते हुए, परम् आनन्द को प्राप्त करते हुए, शरीरत्याग के उपरान्त परम् गति मोक्ष को प्राप्त कर सके? इसके लिए भगवान ने निष्काम कर्म का आश्रय लेने को कहा है–

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरूषः।।[2]

तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में सोपानस्वरूप निष्कामकर्म का मार्ग ऐसा मार्ग है जिस पर चलना कभी व्यर्थ नहीं जाता। इस का अभ्यास भेदबुद्धि पर आधारित सकाम कर्ममार्ग को व्यर्थ समझने से ही होता है। भोग तथा ऐश्वर्यों में आसक्त तथा उसी से जिसके मन का हरण कर लिया गया हो, ऐसा व्यक्ति कर्मयोगी नहीं हो सकता, क्योंकि सांसारिक प्रलोभनों में उलझी हुई उसकी बुद्धि एक निश्चयवाली नहीं हो पाती –

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।[3]

जब मनुष्य अपने जीवन के सकुशल संचालन के लिए आजीविका का पालन करते हुए, उस कर्म से प्राप्त होने वाले फल की कामना से रहित होकर, केवल अपने कर्म को सर्वस्व समझकर अनासक्त भाव से अपना कर्म करता है, वही उसके लिए कल्याण का मार्ग है।

श्रीकृष्ण ने संसारी जीवों का प्रतिनिधित्व करने वाले अर्जुन को कर्मसिद्धान्त के सम्बन्ध में चार आधारभूत बातों को बताया है– 1. मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने का है। 2. उस कर्म का फल उसकी इच्छा के अनुसार मिले , यह उसके अधिकार में नहीं है। 3. मनुष्य को कर्मफल का कारण नहीं बनना चाहिए। 4. न हीं, कर्मों को निष्प्रयोजन समझकर निकम्मा बन जाना चाहिए–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[4]

यदि यह कोई कहे कि जब फल की कामना ही नहीं होगी तो व्यक्ति कर्म ही क्यों करेगा? इसका उत्तर यह है कि विना कर्म किये इस संसार में कोई व्यक्ति रह ही नहीं सकता। कर्म तो करना ही है। सभी व्यक्ति प्रकृति के तीन गुणों से प्रेरित होकर अपने कर्मों को करते ही हैं–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैगुणैः।।[5]

साथ ही कर्मों को न करन वाले व्यक्ति की शरीर यात्रा का पूर्ण होना संभव नहीं है। इसीलिए अर्जुन को अपना कर्म करने के लिए प्रेरित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं–

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।।[6]

कर्मों को हमें किस प्रकार से करना चाहिए कि उसके फल के बन्धन से व्यक्ति मुक्त रहे? वस्तुतः कर्मों को करने के पीछे हमारी इन्द्रियाँ जुड़ी रहती हैं। हम राग और द्वेष के वशीभूत होकर अपनी इन्द्रियों द्वारा कर्मों के प्रति प्रवृत्त होते हैं। यहीं बन्धन का कारण है। इसके लिए भगवान कहते हैं–

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।[7]

रागद्वेषादि द्वन्द्वों की भूमिका पर प्रतिष्ठित होने के कारण सकाम कर्म मनुष्य को सुख–दुःख, पाप–पुण्य आदि द्वन्द्वों में डालते हैं, जबकि निष्काम भावना से उन्हीं कर्मों को करता हुआ मनुष्य इन द्वन्द्वों से मुक्त रहता हुआ परम् शान्ति का अनुभव करता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान न्यायिक सन्दर्भ में देखने को मिलता है। मान लीजिए किसी व्यक्ति के द्वारा किसी की हत्या हो जाती है। न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत उस व्यक्ति के इस कृत्य की विवेचना होती है। निश्चित रूप से हत्या जैसे जघन्य अपराध के लिए उसे कानून की धारा 302 के अन्तर्गत आजीवन कारावास या फांसी की सजा हो सकती है। परन्तु उस मुजरिम का वकील न्यायालय में यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि यह हत्या उस व्यक्ति के द्वारा जानबूझ कर नहीं की गयी है, बल्कि अनजाने में हो गयी है। यहाँ जानबूझ कर हत्या तथा अनजाने में हुयी हत्या में क्या अन्तर है। हत्या तो हत्या है। अन्तर है, यही तो वह वकील सिद्ध करने का प्रयास करता है। जानबूझ कर की गयी हत्या में हत्यारे की कामना (Intention) उस कृत्य के साथ जुड़ी हुयी है, जबकि अनजाने में हुयी हत्या में हत्या करने वाले की इच्छा उस कृत्य के साथ नहीं जुड़ी हुयी है। इच्छा जुड़ा होना सकाम कर्म है जबकि इच्छा का न जुड़ा होना निष्काम कर्म है। जैसे ही सिद्ध हो जाता है कि हत्या होने में हत्या करने वाले की कामना या इच्छा नहीं थी, केस कमजोर पड़ जाता है, परिणामस्वरूप उस व्यक्ति पर आई0पी0सी0 की धारा 302 की जगह धारा 304 के तहत अपेक्षाकृत हल्की सजा दी जाती है। इस प्रकार धारा 304 के मामले में आरोपी को दंड तो दिया जाता है, किन्तु इस धारा मे धारा 302 के अपराध से कम दंड देने का प्रावधान दिया गया है। इससे बढ़कर निष्काम कर्म का वर्तमान समय में कोई उदाहरण नहीं हो सकता। इस प्रकार सकामकर्म निष्कामकर्म की अपेक्षा हीन कोटि का है, अतएव हेय है। यदि राग और द्वेष दोनों से रहित होकर इन्द्रियों को अपन वश में रखकर व्यक्ति किसी कर्म को करता है तो वहीं बन्धनों से मुक्त होकर परम् आनन्द को प्राप्त करता है। कामनापूर्वक कर्म करने वाले की अपेक्षा कामना आदि से रहित होकर उसी कर्म को करने वाला व्यक्ति मोक्ष पाने का अधिकारी होता है–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा निमम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।[8]

कर्मों को करने की कुशलता का नाम ही कर्मयोग है। सकामभावना से फल की लिप्सा से कर्मों को करने वाला दुःखों से मुक्त नहीं हो पाता, जबकि निष्कामभावना से फल की ईच्छा से रहित होकर किया जाने वाला कर्म बन्धनों से मुक्ति देने वाला होता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि निष्काम कर्मयोग वाली बुद्धि से किया जाने वाला कर्म पाप और पुण्य रूपी दोनों प्रकार के फलों के बन्धन से रहित होता है। यही कर्मयोग है, यही कर्मकौशल्य है–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।[9]

कर्मयोग के रास्ते पर चलने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम अपनी बुद्धि को समत्व वाली बुद्धि के रूप में प्रतिष्ठित करनी होगी। इसके लिए उसे सुख दुःख, हानि लाभ, जय पराजय आदि द्वन्द्वों से अपनी बुद्धि को अप्रभावित रखते हुए समता की भावना से युक्त करनी होगी। क्योंकि समत्व बुद्धि की भावना के विना कर्मयोग के पथ पर चला नहीं जा सकता। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के माध्यम से साधारण संसारी व्यक्ति को आसक्ति का परित्याग करते हुए सिद्धि अथवा असिद्धि दोनों ही स्थितियों में समान रहते हुए अपने कर्म को करने के लिए कहते हैं–

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[10]

कामना का सीधा सम्बन्ध मन से है। इच्छाएँ मन में उत्पन्न होती हैं। उन इच्छाओं की पूर्ति हेतु मन इन्द्रियों को अभिप्रेरित करता है। निष्काम कर्म के मार्ग पर चलने वाले को सर्वप्रथम अपने मन पर नियंत्रण करना आवश्यक होता है। परन्तु मन इतना चंचल और ताकतवर होता है कि आसानी से नियंत्रण में नहीं आ पाता। अर्जुन ने भगवान के समक्ष उसके नियंत्रण की कठिनता का उल्लेख किया है–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवदृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।[11]

मन पर नियंत्रण न होने पर इन्द्रियाँ मन को अपने पीछे पीछे विषयों की ओर दौड़ाती रहती हैं जिस तरह से नदी में नाव को तेज हवा अपनी इच्छानुसार हिचकोले खाने पर विवश कर देता है। इसलिए कर्मयोग के मार्ग पर चलने वाले को सबसे पहले इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर अन्तर्मुखी करना आवश्यक होता है–

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।[12]

इन्द्रियों को विषयों से विमुख कर नियन्त्रित करने की प्रक्रिया को कछुए के उदाहरण से समझा जा सकता है। जिस प्रकार कछुआ अपने हाथ पैर आदि समस्त अंगों को समेटकर अपने कवच के अन्दर कर लेता है, उसी प्रकार कर्मयोग के पथ पर चलने वाला अपने समस्त इन्द्रियों को बाहरी विषयों से विमुख कर लेता है। कभी कभी ऐसा होता है कि इन्द्रियों को खींच लेने के बाद भी मन उन उन विषयों की ओर जाने की चेष्टा करता है। जैसे कोई उपवास किया हुआ व्यक्ति भोजन से विमुख तो रहता है, परन्तु उसका मन खाने को देखकर ललचता रहता है। यह ठीक नहीं है। इन्द्रियों के साथ साथ मन का भी नियंत्रण आवश्यक है तभी व्यक्ति कर्मयोग में स्थित हो सकता है–

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे कि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।[13]

व्यक्ति को निष्काम मार्ग का अनुसरण क्योंकर करना चाहिए। इसके लिए कामना से युक्त होकर कर्म करने पर होने वाली दुर्गति का उल्लेख करना भी जरूरी है। इसके लिए भगवान सकाम भावना से कर्म करने वाले के पतन की पूरी शृंखला का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि जो लोग अपने कर्मों को कामना के वशीभूत होकर करते हैं, वे विनाश को प्राप्त होते हैं–

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधात्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणस्यति।।[14]

इस प्रकार सकाम कर्म मानव को बन्धन की ओर ले जाता हुआ पतन को प्राप्त कराता है, इसलिए हेय है। इसके विपरीत निष्काम कर्म मानव को परब्रह्म परमात्मा के पास शीघ्र ही पहुँचा देता है – योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति।[15] जहाँ निष्काम भावना है, वहाँ शाश्वत शान्ति है, कल्याण है। परन्तु जहाँ सकाम भावना है, वहाँ सांसारिकता है, बन्धन है, पुनर्जन्म रूपी सुख दुःख की नित्यता है। इसलिए कर्मों को करते हुए जल और कमल के पत्ते के सम्पर्क की तरह उन कर्मों में लिप्त नहीं होना चाहिए। अनासक्त भाव से ब्रह्मार्पण बुद्धि से कर्मों को करने में कोई दोष नहीं है, कोई बन्धन नहीं है–

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।।[16]

गीता में बार बार दोहराया गया है कि कर्म से संन्यास न लेकर कर्म के फलों से संन्यास लेना चाहिए। कर्म का प्रेरक फल नहीं होना चाहिए। अर्जुन के पूछने पर कि कर्मों के संन्यास और निष्काम कर्मयोग में कौन उत्तम और कल्याणकारी है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मों का संन्यास और निष्काम कर्मयोग यह दोनों ही परम कल्याण करने वाले हैं परन्तु उन दोनों में भी कर्मों के संन्यास से निष्काम कर्म योग श्रेष्ठ है–

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।[17]

कर्मयोग में कर्मफल के त्याग का आदेश प्राप्त होता है , फिर भी उस त्याग में इन्द्रियों का दमन नहीं है, बल्कि उन्हें विवेक के मार्ग पर नियन्त्रित करके चलने देना है। प्रो0 हिरियन्ना के शब्दों में गीता कर्मों के त्याग के बदले कर्म में त्याग का उपदेश देती है– Gita teaching stands not for renunciation of action but for renunciation in action (Outlines of Indian Philosophy. page 121) । राधाकृष्णन ने भी कर्मयोग को गीता का मौलिक उपदेश कहा है – The whole setting of Gita points out that it is an exhortation to action (Indian Philosophy. Vol. 1, page 564)। लोकमान्य तिलक के अनुसार गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग ही है। पाश्चात्य दार्शनिक काण्ट ने भी गीता के कर्मयोग की तरह ही कर्त्तव्य को कर्त्तव्य के लिए (Duty for the Sake of Duty) करने को कहा है। कर्त्तव्य कर्त्तव्य के लिए का अर्थ है कि मानव को कर्त्तव्य करते समय कर्त्तव्य के लिए तत्पर रहना चाहिए। कर्त्तव्य का पालन करते समय फल की आशा भाव छोड़ देना चाहिए।

यद्यपि ज्ञान, कर्म और भक्ति इन तीनों मार्गों में कोई विरोध नहीं है। ज्ञानात्मक पहलू के अनुरूप गीता का ज्ञानमार्ग है। भावनात्मक पहलू के अनुरूप गीता का भक्ति मार्ग है तथा क्रियात्मक पहलू के अनुरूप गीता को कर्ममार्ग है। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि साधारण संसारी व्यक्ति के लिए कर्मयोग का मार्ग श्रेयस्कर तथा सुगम है। हम सभी अपने अपने दैनिक कर्त्तव्य कर्मों को, भगवदर्पण बुद्धि से निष्काम भाव से करते हुए , अनायास उपस्थित रागद्वेषादि द्वन्द्वों से अपने को अप्रभावित रखते हुए, इच्छा रहित होकर इन्द्रियों को स्वाभाविक रूप से विषयों में विचरन करने देते हुए भी यदि सम्पन्न करते हैं तो इस संसार में रहते हुए परम् शान्ति का अनुभव प्राप्त करेंगे तथा शरीर यात्रा पूर्ण करने के उपरान्त परम् गति मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

सन्दर्भसंकेतसूची :–

1. श्रीमद्भगवद्गीता 9/22
2. श्रीमद्भगवद्गीता 3/19
3. श्रीमद्भगवद्गीता 2/44
4. श्रीमद्भगवद्गीता 2/47
5. श्रीमद्भगवद्गीता 3/5
6. श्रीमद्भगवद्गीता 3/8
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2/64
8. श्रीमद्भगवद्गीता 3/7
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
10. श्रीमद्भगवद्गीता 2/48
11. श्रीमद्भगवद्गीता 6/34
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2/68
13. श्रीमद्भगवद्गीता 2/69
14. श्रीमद्भगवद्गीता 2/62,63
15. श्रीमद्भगवद्गीता 5/6
16. श्रीमद्भगवद्गीता 5/10,12
17. श्रीमद्भगवद्गीता 5/2

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. भारतीय दर्शन की रूपरेखा– प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
2. भारतीय दर्शन (आलोचन एवं अनुशीलन)– चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनासीदास, दिल्ली
3. संस्कृतनिबन्धशतकम् – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
4. श्रीमद्भगवद्गीता – श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई
5. भारतीय दर्शन की रूपरेखा – आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा ओरियेन्टालिया, दिल्ली
6. भारतीय दर्शन का इतिहास– डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर
7. भारतीय दर्शन (ऐतिहासिक और समीक्षात्मक विवेचन)– डॉ. नन्द किशोर देवराज, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
8. कर्मयोग – श्री अश्विनी कुमार दत्त, हिन्दी पुस्तकभवन, कलकत्ता